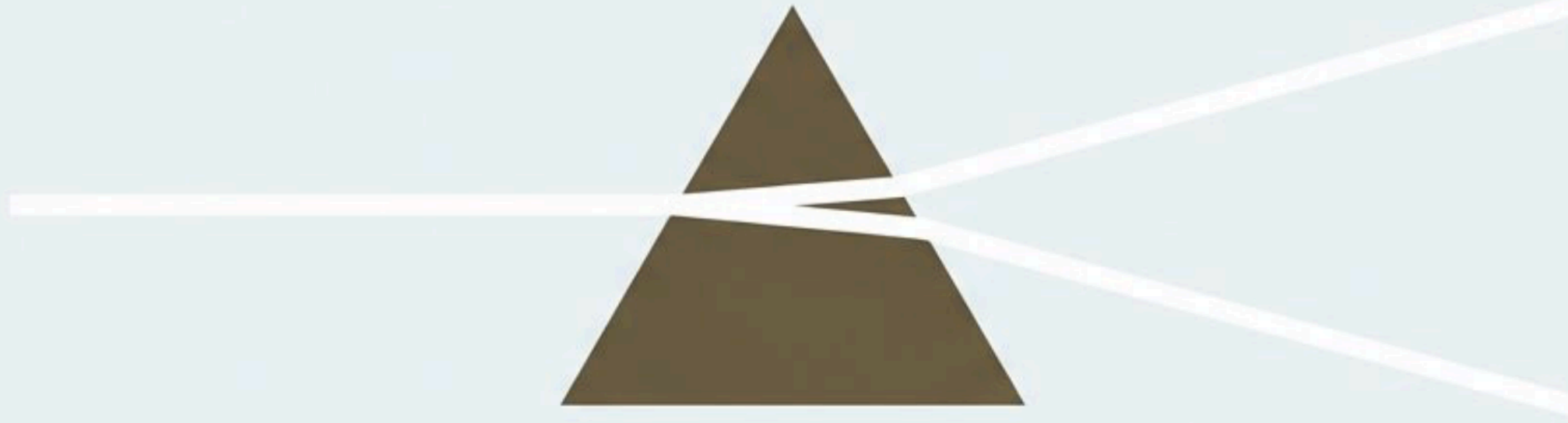


न्याय दीपिका के आधार पर जैन तार्किक विश्लेषण

प्राभाकर दर्शन की समीक्षा: 'अनुभूति' की तार्किक परीक्षा



क्या अनुभूति ही प्रमाण है? व्याकरण और तर्क की कसौटी
पर मीमांसक मत का खंडन।

प्राभाकर मीमांसकों का आकर्षक प्रमाण-लक्षण

“अनुभूतिः प्रमाणम्”
(अनुभूति ही प्रमाण है)

यदि यह लक्षण इतना ही पूर्ण है, तो जैन न्याय इसे क्यों अस्वीर करता है? इसमें क्या तार्किक दोष छिपा है?

प्रभाकर दर्शन का यह लक्षण प्रथम दृष्टि में अत्यंत सत्य और आध्यात्मिक प्रतीत होता है। जैन अध्यात्म भी आत्मानुभूति को सर्वोच्च मानता है। जो स्वयं को अनुभव में आए, वही तो सच्चा ज्ञान है!



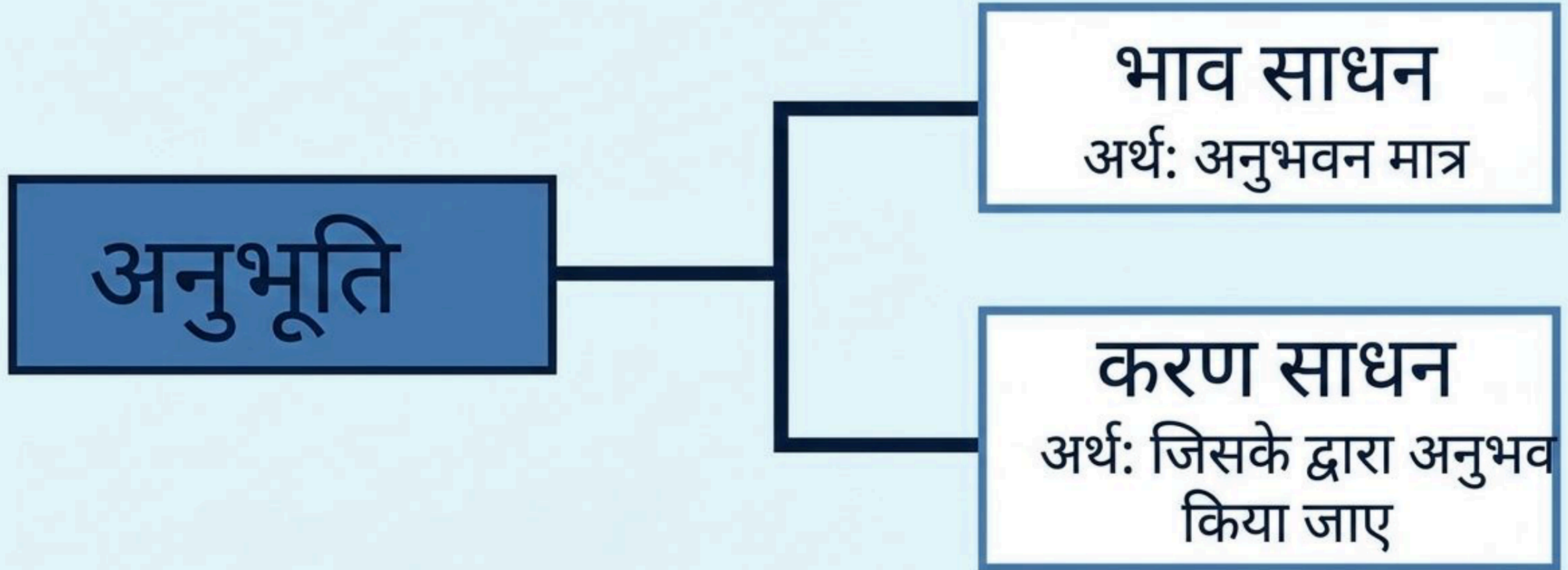
“अनुभूतिः प्रमाणम्”

आचार्य अभिनव धर्मभूषण यति का स्पष्ट निर्णय
तदपि असंगतम्
(यह लक्षण भी असंगत है।)

यह लक्षण अव्याप्ति
दोष से दूषित है।

अव्याप्ति दोष क्या है?
जब कोई लक्षण अपने लक्ष्य
के एक भाग पर तो लागू हो,
परंतु संपूर्ण लक्ष्य को न घेर सके,
वहाँ अव्याप्ति दोष होता है।

शब्द की व्याकरणिक चीर-फाड़: दो संभावित मार्ग
जैन तार्किक पूछते हैं: आपने 'अनुभूति' शब्द किस 'साधन' (व्याकरणिक व्युत्पत्ति) में प्रयुक्त किया है? इसके दो ही अर्थ संभव हैं:



शालिकनाथ (प्रकरण पंजिका) का अंतर्विरोधी स्पष्टीकरण
प्राभाकर विद्वान शालिकनाथ के अनुसार, दोनों साधनों से 'प्रमाण' का स्वरूप सर्वथा भिन्न हो जाता है:



यदि भाव साधन का आश्रय लें
तो संवित् (ज्ञान) ही प्रमाण है।
(इसका फल: हान, उपादान,
और उपेक्षा है)।



यदि करण साधन का आश्रय लें
तो आत्मा और मन का
सन्निर्कर्ष (संपर्क) प्रमाण है।

स्वरूप का अंतर्विरोध: दो सर्वथा भिन्न परिणाम

तुलनात्मक आधार	 संवित् (ज्ञान)	 आत्मा-मनः सन्निकर्ष
मूल स्वरूप	चेतन	अचेतन क्रिया
अवस्था	प्रमिति का फल	ज्ञान का साधन
स्वभाव	हान-उपादान रूप	केवल दो द्रव्यों का टकराहट
निष्कर्ष: सन्निकर्ष में ज्ञान नहीं है, और ज्ञान में सन्निकर्ष नहीं है। ये दोनों एक नहीं हो सकते।		

अव्याप्ति दोष का अंतिम प्रहार

प्राभाकर मत इन दोनों को प्रमाण मानता है, परंतु 'अनुभूति' शब्द एक बार में एक ही अर्थ दे सकता है:



यदि अनुभूति = संवित्

यदि अनुभूति = सन्निकर्ष

तो आत्मा-मन का सन्निकर्ष प्रमाण की परिधि से बाहर हो जाएगा (अव्याप्ति)।

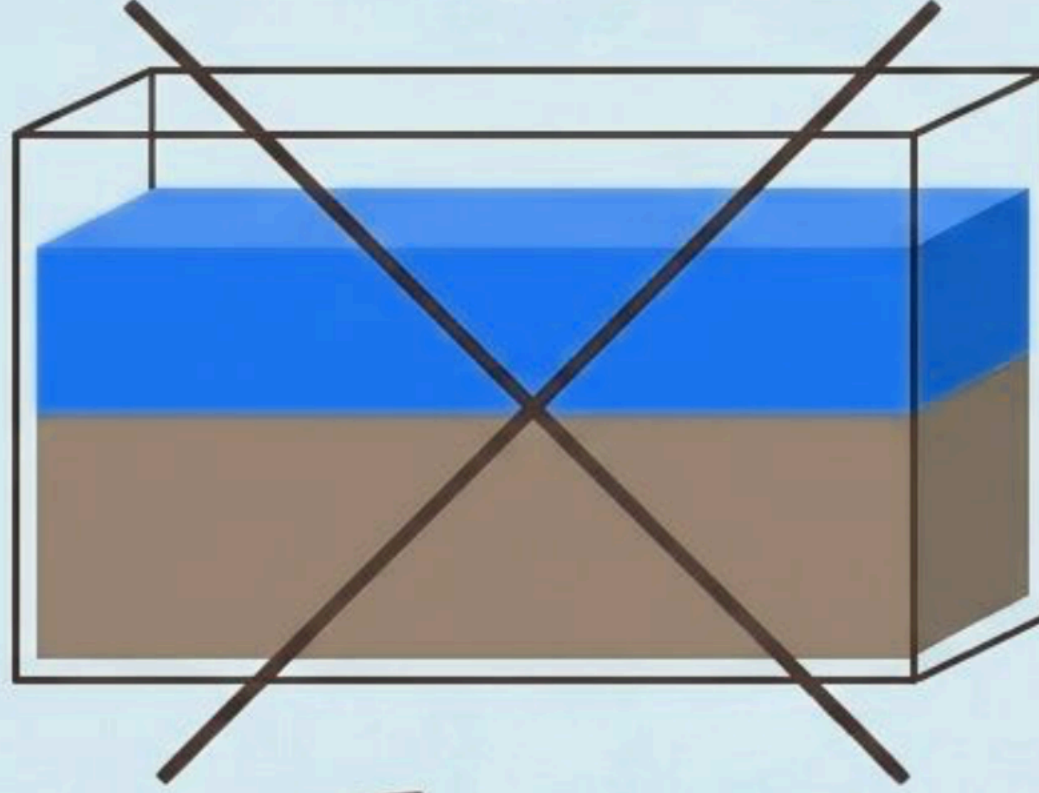
तो संवित् (ज्ञान) प्रमाण की परिधि से बाहर हो जाएगा (अव्याप्ति)।

परिणाम: लक्षण एक देश में रहकर दूसरे देश को छोड़ देता है।

दोनों मान लेने की भ्रांति

क्या हम यह मान सकते हैं कि अनुभूति में करण और भाव दोनों एक साथ समाहित हैं?

सन्निकर्ष
(अचेतन संपर्क)



संवित्
(चेतन ज्ञान)

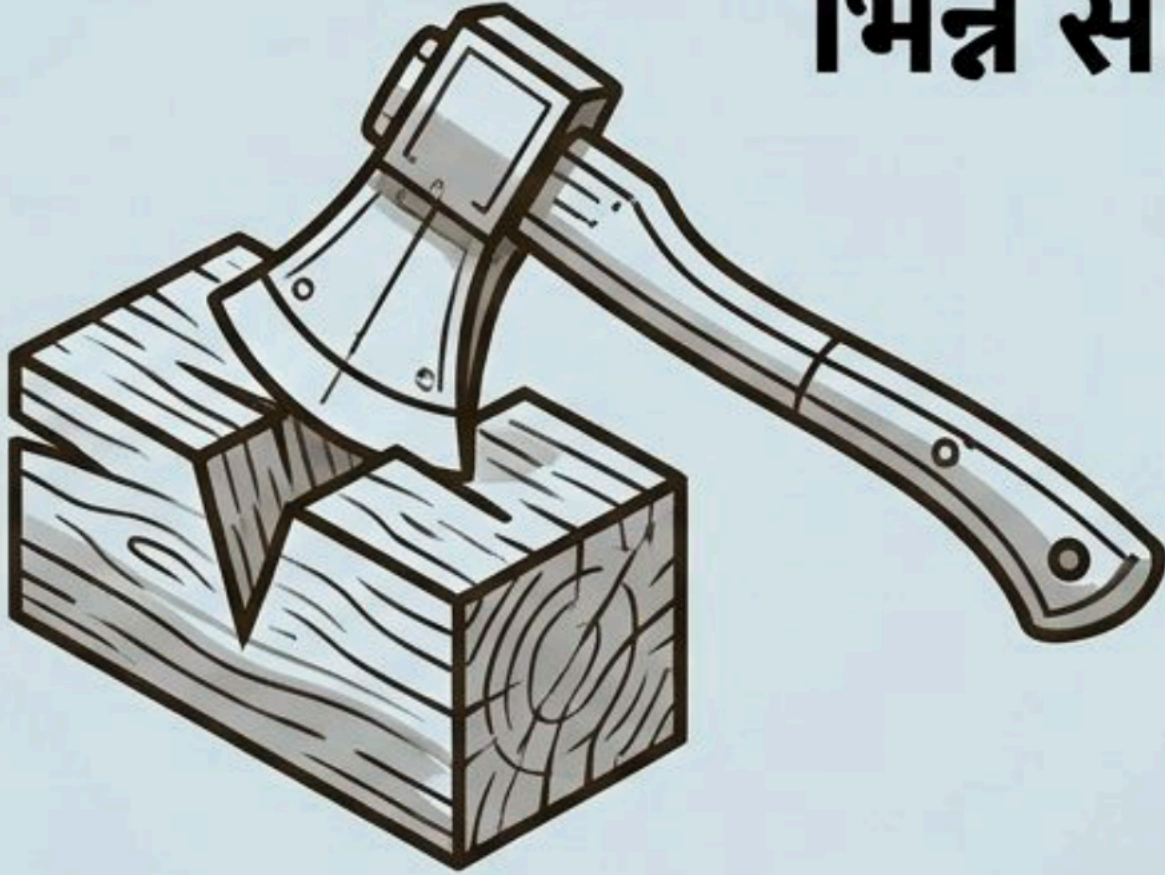
असंभव! जगत में ऐसा कोई एक भाव या पदार्थ नहीं है जो एक ही समय में सन्निकर्ष भी हो और संवित् भी हो।

निष्कर्ष: दो सर्वथा भिन्न और विरोधी भावों को मिलाकर एक अखंड लक्षण नहीं बनाया जा सकता।

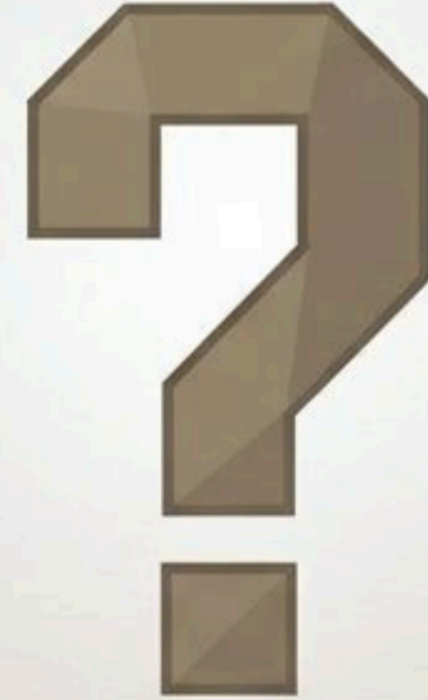
भूल का मूल कारण: 'भिन्न साधन' का एकांतवाद

प्राभाकर मीमांसकों की मूल भूल यह है कि वे 'साधन' को जानने वाले से सर्वथा भिन्न (अलग) मानते हैं।

भिन्न साधन



जैसे कुल्हाड़ी (अचेतन साधन) से लकड़ी काटी जाती है, वैसे ही वे मानते हैं कि आत्मा को ज्ञान उत्पन्न करने के लिए किसी भिन्न अचेतन साधन (मन से टकराहट) की आवश्यकता है।



वे ज्ञान को आत्मा का सहज स्वभाव नहीं, बल्कि एक यांत्रिक उत्पाद मान बैठे।

जैन समाधान: 'अभिन्न साधन' और अनेकांत

ज्ञान परिणमदी सयम् (ज्ञान स्वयं परिणमता है)।



जानने के लिए सर्वथा भिन्न, अचेतन साधन की आवश्यकता नहीं है। जैन दर्शन अभिन्न साधन मानता है।
जो जानता है, वह ज्ञान ही है। ज्ञान ही कर्ता है, ज्ञान ही साधन है, और जानना भी ज्ञान ही है।
जैसे सर्प स्वयं ही कुंडली रूप में परिणत होता है, तैसे ही आत्मा स्वयं ज्ञान रूप में परिणत हो

निष्कर्ष: आत्मा ही ज्ञान है

- अचेतन साधनों, शब्दों या सन्निकर्ष में ज्ञान नहीं है। ज्ञान केवल ज्ञान से ही होता है, और वह ज्ञान ज्ञायक (आत्मा) से अव्यतिरिक्त (अभिन्न) है।
- प्रमाण केवल ज्ञान है, और वह ज्ञान आत्मा का ही निज स्वरूप है, किसी जड़ सन्निकर्ष का नहीं।

मैं ज्ञान स्वरूपी हूँ।